कबीर के भक्ति काव्य का नैतिक स्वरूप

Reena Saroha[1]* Dr. Rajesh Kumar[2]

[1] Research Scholar, PhD Hindi, NIILM University, Kaithal, Haryana

[2] Research Director, NIILM University, Kaithal, Haryana

सार – ***भारतीय संस्कृति में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार पुरुषार्थों की परिकल्पना की गई है। मनुष्य का जीवन इन चार पुरुषार्थों से सुमेलित होता है। ये चारों पुरुषार्थ जीवन का एक भाग न होकर समग्र आदर्श जीवन के साध्य रूप हैं। इन्हीं को संधानित करके मानव-जीवन अग्रसर होता है। मानवीय जीवन में नीति का भी अनन्य साधारण महत्व है। वही हमें उचित-अनुचित का ज्ञान देती हुई चलती है और हमारे चरित्र को आलोकित करती है। इस नीति में 'मानवता' नामक तत्व विशेष होता है, और संत साहित्य की प्रमुख विशेषता मानवता ही है। इसका सबसे बड़ा लक्ष्य है- 'अतीत के अनुभव एवं ज्ञान से वर्तमान की उच्छृंखलताओं एवं अमर्यादाओं को दूर करके मर्यादा की स्थापना करना।'[1] यही मानवता कबीर के काव्य का गौरव है। कबीर मानवीय जीवन को ईश्वर की अमूल्य निधि मानते हैं। कबीर ने निम्न नैतिक तत्वों से चलने का संदेश मनुष्य को दिया है जिससे उसे ईश्वर की प्राप्ति यथासंभव हो सके।***

---------------------------------x---------------------------------

1. प्रेम:

नीति में प्रेमभाव होता है। कबीर की प्रेम भावना की सबसे बड़ी उपलब्धि समन्वयात्मक है। उन्होंने ज्ञान और प्रेम को बड़ी विदग्धता के साथ समन्वित भी किया है, वे कहते हैं-

'कबीर घोड़ा प्रेम का-चेतनि चढ़ि असवार।

ग्यान खडग गहि काल सिरि, भली मचाई रारि।।'[2]

कबीर का मानना है कि, प्रेम का मार्ग अत्यंत अगम्य और अगााध है। उसे प्रेम का आनंद तभी प्राप्त किया जा सकता है जब शीश उतारकर पैरों के नीचे रख दिया जाय अर्थात जब सर्वस्व बलिदान की तैयारी हो तभी उस प्रेम का आनंद प्राप्त किया जा सकता है। जैसे-

'कबीर निज घर प्रेम का, मारग अगम अगाध।

सीस्त उतारि पग तारि धरै, तव निकटि प्रेम का स्वाद।।'[3]

भारतीय दृष्टि से प्रेम बहुत पवित्र वस्तु है। उसके उदय होते ही अज्ञान जनित अंधकार नष्ट हो जाता है, आत्मा निर्मल होकर ईश्वरोन्मुख होने लगती है। कबीर कहते हैं-

'पिंजर प्रेम प्रकासिया, बाग्या जोग अनंत।

संषा षूटा सुख भया, मिल्या पियारा कन्त।

पिंजर प्रेम प्रकासिया, अन्तर भया उजास।

मुख कस्तुरी महीद्‌वयो, वाणी फूटी वास।।'[4]

प्रेम की यह निष्ठता और संयम शीलता त्याग और तपस्या में परिणित हो जाती है। कबीर की स्पष्ट धारणा है कि, 'पे्रम मार्ग की साधना में आत्म त्याग और आत्मबलिदान करना पड़ेगा।'[5]

इस प्रकार जिसका जिससे प्रेम होता है वे चाहे दोनों कितनी भी दूरी पर स्थित क्यों न हो, परस्पर मिल ही जाते हैं। कबीर का प्रेम ईश्वरीय है अतः उनका कहना है कि, ईश्वर प्राप्ति के लिए तन-मन-धन से एकाग्र होकर प्रेमभाव से उसे प्राप्त किया जा सकता है, इसके लिए बाह्याचार करने की आवश्यकता नहीं है। प्रेम विरहित व्यक्ति, वस्तु एवं संसार कबीर को मिथ्या लगता है।

2. अहिंसा:

कबीर ने सर्वत्र अहिंसा का प्रतिपादन किया है। मध्ययुगीन समाज में गोहत्या तथा बकरे की हत्या करके उनका मांस भक्षण किया जाता था। कबीर ने इसका कड़ा विरोध किया है, उनका कहना है कि, मनुष्य और पशुओं के शरीर में मांस एवं

www.ignited.in

रुधिर आदि की समानता होते हुए भी पशुओं के अंग-प्रत्यांग सर्वोपयोगी हैं और मनुष्य के मृत शरीर को सियार भी अत्यंत रुचि से नहीं खाते हैं। ऐसी स्थिति में निरुपयोगी अपने मांस की पुष्टि के लिए परमोपयोगी पशुओं को मारकर खा जाना अनर्थकारी है।

'जस मांस पसु की तस मांस नर की।

रिधुर-रिधुर एक सारा जी।।

पसु के मास भखै सब कोई।

नरहि न भखै सियारा जी।।'[6]

कबीर का मानना है कि, बकरी, गाय तथा अपनी संतान में अन्तर ही क्या है?[7] अपने शरीर के पोषण हेतु किसी के प्राण लेना पाप है।[8] संत कबीर के अनुसार हिंसा केवल सचेतन प्राणी की ही नहीं की जाती बल्कि निर्जीव कहे जाने वाले पेड़, पौधों, उनके पत्तियों की भी की जाती है। इसलिए उनका कहना है कि, प्रत्येक पत्ती में जीव है। पत्ती तोड़ना भी हिंसा है। जिस पत्थर की मूर्ति के लिए मालिन पत्ती तोड़ती है वह तो निर्जीव है-

'भूली मालनि पती तोड़ै, पाती-पाती जीव।

जा मूरति कौ पाती तोड़ै, सौ मूरति नर जीव।।'[9]

अर्थात् मनुष्य का परम कर्तव्य प्रेम के साथ सद्व्यवहार करना है। प्रेम, अहिंसा का मूल है। इसलिए आज इस्लाम धर्म में ही नहीं सभी धर्मों के लोग मुर्गा, गाय, बैल, बकरी की हत्या करके उसका मांस भक्षण करते हैं अर्थात कबीर की अपने युग की कही हुई हर बात आज प्रासंगिक है।

3. सत्य:

मानव के सुख का लक्ष्य या उद्देश्य शारीरिक सुख या भौतिक सुख संपत्ति की प्राप्ति ही नहीं होता, वरन इसके अतिरिक्त कुछ और भी है, जो मानव को अपनी ओर आकर्षित करने की क्षमता रखता है वह है 'सत्य' और उसकी प्राप्ति। कबीर के अनुसार सत्य का पालन करने वाला व्यक्ति निर्भीक हो जाता है, उसका हृदय निर्मल हो जाता है। उसे परमात्मा के सम्मुख उपस्थित होने में किसी प्रकार का संकोच नहीं होता है। उसके व्यवहार में किसी भी प्रकार की बाधा नहीं होती। उसे परमगति प्राप्त होती है इसमें कोई संशय नहीं-

'लेखा देणां सोहरा जे दिल साँचा होइ।

उस चंगे दीवाँन मैं, पता न पकड़ै कोइ।।'[10]

यदि मनुष्य का मन सच्चा है और सत्य भावना से ही उसने सारे कार्य किये हैं तो भगवान के समक्ष अपने कार्यों का हिसाब देते समय अत्यानंद का अनुभव होगा। अन्त में कबीर ने बताया है कि, इन मिथ्याचारों को छोड़कर सत्याचरण करना ही मुक्ति और ईश्वर प्राप्ति का एकमात्र साधन है। यदि झूठे शिष्य को सद्गुरु मिल जाय तो उसका संसार से प्रेम संबंध टूट जाता है और माया-मोह से दूर हो जाता है। जैसे-

'झूठै कौ झूठा मिलै, दूणाँ बढ़ै सनेह।

झूठे कूं सांचा मिलै, तब ही तूटैं नेह।।'[11]

4. सत्संगति:

समाज की उन्नति के लिए दुष्टों को खल पुरुषों से दूर रखना जरूरी है। खल पुरुषों से ही समाज का ह्रास होता है। इसलिए कबीर कहते हैं कि, बुद्धिमान व्यक्ति का संग करने पर उसकी मित्रता का मूल्य ज्ञात होता है, उसकी मित्रता लोई के पक्के रंग की तरह होती है। जिस पर लोई के चिथड़े-चिथड़े हो जाने पर भी उसका रंग नहीं उतरता, उसी प्रकार बड़ी-बड़ी विपत्तियों के आने पर भी बुद्धिमान की मित्रता अपना रंग नहीं छोड़ती। वे कहते हैं-

'करिए तौ करि जांणिये, सारीष सूं रंग।

तीर-तीर तोई थई, तऊ छाड़े रंग।।'[12]

कबीर का कहना है कि, "सत्संगति समाज में रहकर ही प्राप्त हो जाती है। समाज में प्रचलित सुनी-सुनाई बातों पर विश्वास नहीं करना चाहिए। प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त हो जाने के बाद ही विश्वास करना चाहिए। व्यक्ति एक समाज जीवी प्राणी है, उसे सत्संगति की नितांत आवश्यकता है और हर क्षण वह सत्संगति करता रहता है। क्योंकि सत्संगति ही व्यक्ति के लिए स्वर्ग है।"[13]

5. परोपकार की भावना:

समाज में यदि परोपकार और शुद्ध आचरण का प्रसारण हो जाये तो स्थिरता आ जाती है। व्यक्ति-व्यक्ति में संबंध जुड़ता रहता है। परोपकारी व्यक्ति अपने घर में भी चुप नहीं बैठ सकता, वह कम क्षेत्र में ही रमता है। जिस प्रकार बैल के बिना जमीन नहीं बोई जाती उसी प्रकार बिना सूत के मणि कैसे पिरोई जा सकती है? कबीर ने परोपकारी भावना को अभिव्यक्त करते हुए कहा है कि, 'वृक्ष बारह महीने फल देता

है जिसका उपभोग करके सभी सुख का अनुभव करते हैं। उसकी शीतल छाया में बैठकर सुख पाते हैं और उसके ऊपर अनेक पक्षी घोंसला बनाकर रहते हैं। वृक्ष का संपूर्ण शरीर परहित साधन में ही लगा रहता है। जैसे-

'तखर तास बिलंविए, बारह मास फलत।

सीतल छाया गहर फल, पंषी केलि करंत।।'[14]

कबीर के काव्य में परोपकार की आवश्यकता पर विशेष बल दिया गया है। 'स्व' और 'पर' के अभेद की स्वीकृति निष्काम परोपकार करने का आधार है। उनका कहना है कि शरीर की महत्ता हरि-स्मरण में, द्रव्य की सार्थकता दान देने में तथा बुद्धि की बड़ाई परोपकार करने में ही है और यही मानव जीवन का उत्तम फल है-

'हाड़ बड़ा हरि भजन करि, द्रव्य बड़ा कछु देह।

अकल बड़ी उपकार करि, जीवन का फल येह।'[15]

इस प्रकार कबीर ने अपने युगीन समाज में परोपकार की भावना बढ़ाने की सलाह दी है।

6. अस्तेय: (चोरी न करना):

जिस वस्तु पर दूसरे का अधिकार है और और उसकी अनुमति के बिना उसका लेना चोरी कहलाता है। चोरी न करना अस्तेय है। धन, संपत्ति, वस्त्र आदि स्थूल पदार्थों की ही चोरी नहीं, बल्कि विचारों तक की भी नहीं होनी चाहिए। कबीर के अनुसार विश्वसनीयता ईश्वर द्वारा समस्त प्राणियों के आवश्यकतानुसार सभी पदार्थ निर्मित किये गये हैं। जिसके लिए भोग रचा है उसको उतना ही प्राप्त होता है। उसमें न रत्ती भर घटता है, न तिल भर बढ़ता है, चाहे मनुष्य कितना भी प्रयत्न क्यों न करे। वे कहते हैं-

'जाको जेता निरमया, ताकौ तेता होइ।

रती घटै न तिल बढ़ै, जौ सिर कुटै कोइ।'[16]

अर्थात् हम कहते हैं कि, 'समय से पहले और किस्मत से ज्यादा किसी को कुछ नहीं मिलता' यही कहावत कबीर के अस्तेय संबंधी विचारों के बारे में सार्थक ठहरती है। कबीर चोरी न करने के भाव को ही अस्तेय नहीं मानते हैं, बल्कि मन में चोरी का भाव उत्पन्न होना, छल, कपट, प्रपंच से धन अर्जित करना, अपनी आवश्यकता से अधिक सामान का उपयोग करना आदि अनुचित है। उस समय भौतिक वस्तुओं की चोरी हो जाती थी।

7. सदाचरण:

प्राचीन काल से ही मानव समाज के उन्नति के लिए नैतिकता तथा सदाचरण पर जोर दिया जाता है। गीता में योगी के स्वरूप निर्धारण में नैतिक संयम पर अधिक जोर दिया गया है। कबीर ने नैतिक संयम और सदाचार के सभी पक्षों पर विस्तृत वैचारिक मंथन किया है। वे सदाचरण के लिए व्यक्ति के कथनी और करनी में साम्य देखना चाहते हैं। जैसे-

'जैसी मुख तै नीकसै, तैसी चालै चाल।

पार ब्रम्हां नेड रहे पल मैं करै निहाल।।'[17]

कबीर मनुष्य को समझाते हैं कि, यदि वह ईश्वर को प्राप्त करना चाहता है तो उसे अपनी वाणी और आचरण में समन्वय स्थापित करना आवश्यक है।-

'कथनी कथी तो क्या भया, जे करणी न ठहराइ।

कालबूत के कोट ज्यूं, देषत ही ढहि जाइ।।'[18]

8. अपरिग्रह:

अपने स्वार्थ एवं उपभोग के लिए धन-संपदा तथा भोग सामग्री को एकत्र करना परिग्रह है तथा अनावश्यक वस्तु के ग्रहण का त्याग करना ही अपरिग्रह है। धनादि के संचय के लिए मानव अनेक प्रकार के कुत्सित कार्य करने के लिए सतत तत्पर रहता है। संपत्ति संचय की मनोवृत्ति के कारण समाज का आर्थिक ढाँचा अस्त-व्यस्त हो जाता है और अराजकता फैलती है। धन एक ओर संचित होता रहता है दूसरी अन्य लोगों को धन लाभ हो जाता है। एक धनी हो जाता है तथा दूसरा निर्धन बन जाता है। जिससे समाज में आर्थिक विषमता और अराजकता परिव्याप्त हो जाती है। कबीर की धारणा है कि, मनुष्य को ऐसा धन संग्रह करना चाहिए, जो भविष्य में काम आ सके। कोई भी व्यक्ति धन बांधकर अपने साथ ले जाता नहीं देखा गया। मरने पर तो खाली हाथ ही जाना पड़ता है। अतः जो धन साथ जा सके, वही संग्रह करना चाहिए-

'कबीर सो धन संचिए, जो आगै कूं होइ।

सीस चधएं पोटली, ले जात न देख्या कोइ।।'[19]

अतः कबीर ने भौतिक धन की अपेक्षा अभौतिक धन संचित करने की सलाह दी है।

www.ignited.in

9. पतिव्रता:

मध्यकालीन समाज में नारी के प्रति देखने का दृष्टिकोण हेय था। कबीर ने नारी के कनक-कामिनी रूप की निंदा की है, वहीं दूसरी ओर उसके पतिव्रत रूप की मुक्ति कंठ से प्रशंसा भी की है। कबीर का मानना है कि, पतिव्रता नारी अपने आंखों में अपने पति को समाकर ना स्वयं किसी अन्य को देखने की इच्छा रखती है और ना ही अपने पति को किसी अन्य की तरफ देखने का अवसर देती है।

कबीर ने नारी के कामिनी रूप की निंदा करते हुए उसे नरक का कुण्ड बताया है तथा परनारी को पैनी छुरी माना है। उनकी यह भी धारणा है कि, परनारी के कारण ही रावण जैसे महाप्रतापी राजा का विनाश भी हुआ है उनके शब्दों में-

'परनारी पैनी छुरी, मत कोई लावो अंग।

रावण के दस सिर गए, परनारी के संग।।'[20]

कबीर पतिव्रता नारी की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि-"यदि पतिव्रता नारी वस्त्राभाव के कारण ठीक प्रकार से अपना तन नहीं ढँक पाती है, तो उसके लिए उसका पति स्वयं लज्जित होता है।"[21] कबीर के लिए मैली-कुचैली पतिव्रता भी वंदनीय है।[22] पतिव्रता नारी को वे शूर और वीर दोनों के समान उच्च और अभिनंदनीय मानते हैं।

10. निंदा त्याग:

किसी की निंदा करना अच्छी बात नहीं है क्योंकि पर-निंदा साधना में बाधक होती है। इसी बात को समझाते हुए कबीर कहते हैं- जो मनुष्य अज्ञानी है, वे ही दूसरों की निंदा किया करते हैं। निंदक व्यक्ति की यह दुर्बलता होती है कि, दूसरों के दोषों को देखकर तो वह हंसता है, किन्तु अने अपार दोषों की ओर कभी ध्यान भी नहीं देता। उनका कहना है कि, जहां तक हो सके निंदक को अपने समीप रखना चाहिए, क्योंकि वह बिना पानी, साबुन के मन को शुद्ध बना देता है। जैसे-

निंदक दूरि न कीजिये, दीजें आदर मंयन।

निरमल तन-मन सब करैं, बकि-बकि आँनहि आन।।'[23]

कबीर का मन्तव्य है कि, जिन लोगों को ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ है वे लोग ही ज्ञानियों की निंदा करते हैं। किन्तु जो लोग ईश्वरीय नाम में अनुरक्त रहते हैं उन्हें अन्य किसी वस्तु की अपेक्षा नहीं रहती। जैसे-

'लोग बिचारा नीदई, जिनह न पाया ग्यान।

राम नाव राता रहै, तिन हूं न भावैं आन।।'[24]

11. क्रोध-विसर्जन:

जिस प्रकार हाथों की उंगलियां समान नहीं होती हैं, उसी प्रकार समाज में एक ही स्वभाव के व्यक्ति नहीं रहते। मध्ययुगीन समाज में क्रोधित व्यक्तियों की संख्या अधिक मात्रा में थी। क्रोध को कबीर ने 'आध्यात्मिक अभ्युदय में बड़ा बाधक बताया है। वाल्मीकि रामायण में बताया है कि, "क्रोधी के सामने अकार्य और अवाच्य जैसा कुछ नहीं होता, अर्थात वह कुछ भी कर सकता है और बोल सकता है।"[25]

कबीर ने 'काम, क्रोध, माया, मद, मत्सर को सांसारिक कर्मो एवं विशेषतः भक्ति के मार्ग में बाधा माना है।'[26] जो व्यक्ति काम क्रोध इत्यादि का त्याग करने में सफल होता है वही 'हरि पद चीन्हें सोइ।[27] संत कबीर ने ज्ञान की भट्टी में काम और क्रोध को जलाकर नष्ट करने की सलाह दी है। जैसे-

'काम, क्रोध, दोइ किया बलीता, छुटी गई संसारी।।'[28]

12. क्षमा भाव:

मध्ययुगीन समाज में क्रोधी व्यक्तियों की तरह क्षमा भाव से परिपूर्ण व्यक्ति भी थे। कबीर ने क्षमा को सर्वश्रेष्ठ मानवीय गुण मानते हुए लोगों को इसे ग्रहण करने का उपदेश दिया है। लोक में क्षमा का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण 'धरती' का है। मनुष्य धरती को रौंदता है, खोदता है, हर सम्भव कष्ट सहन करने के उपरान्त भी धरती मनुष्य को खाद्य पदार्थ उपलब्ध करती है, बाढ़ के उपरान्त वन के वृक्ष और अधिक फलते-फूलते हैं। इसी प्रकार दुष्ट के कुशब्दों को हरिजन क्षमा कर देता है। कबीर के अनुसार क्रोध जैसे जहर को अमृत रूपी क्षमा भाव से ही मारा जा सकता है। जैसे-

'क्षमा क्रोध को क्षय करे, जो काहू पर होय।

कहै कबीर ता दास कूँ, गंजि न सकि है कोय।।'[29]

इस प्रकार कबीर का कहना है कि, क्षमा ही अहिंसा का वह स्वरूप है जहां साम्य की दशा उत्पन्न हो जाती है तथा समस्त प्राणियों पर एक ही भाव रखा जाने लगता है।

13. दान:

दान में किसी दूसरे को अपनी वस्तु का स्वामी बना दिया जाता है। श्रद्धा से जो कुछ सुपात्र को दिया जाता है, वह सफल

www.ignited.in

देय है। किन्तु अश्रद्धा से या कुपात्र को दिया गया दान निष्फल होता है। धर्मशास्त्र में अपने सामथ्र्य के अनुसार दान देने की बात कही गई है[30] कबीर के युग में भी दान देने की प्रथा प्रचलित थी। दान के संदर्भ में उनका मत है कि, दान सच्चे एवं प्रसन्न मन से देना चाहिए।

14. शौच:

पवित्रता को शौच की संज्ञा प्राप्त है। कबीर का शौच शारीरिक या बाह्य न होकर आंतरिक है। उन्होंने कहा है कि, इस संसार में पवित्र हरिनाम से चाहो तो अपने भावों को शुद्ध, स्वच्छ और निर्मल कर लो अथवा चाहो तो कपटपूर्ण व्यवहार करके पापों की कालिमा चढ़ा लो, जो कभी न धुले, चाहे सौ मन साबुन ही क्यों न लगायो।'[31] मन की माला फेरने से ही स्वच्छता और आत्मप्रकाश की प्राप्ति होती है।[32] वे मन की शुचिता के अभाव में काया की स्वच्छता को निस्सार मानते हैं। जैसे-

'कबीर काया मांजत क्या करै, कापड़ धोइम धोइ।

उज्वल हुआ न छुटिए, सुख नींद डी न सोइ।'[33]

उनकी दृष्टि में बाह्य निर्मलता आडम्बर मात्र है। परंतु बाह्य और आंतरिक शुचिता की आवश्यकता है। दोनों दृष्टियों से पवित्र होना चाहिए परंतु आंतरिक पवित्रता अधिक होनी चाहिए।

15. स्वावलंबन:

कबीर के आर्थिक विचारों में हमने स्वावलंबन की विवेचना की है। कबीर श्रमजीवी संत थे। जुलाहा जाति में व्यवहृत होने के कारण कपड़े बुनने का काम करते थे। उन्होंने अपने समय के परोपजीवी लोगों का कड़ा विरोध किया है तथा स्वावलंबन पर बल दिया है। स्वावलंबन से पुरुषार्थ की सिद्धि होती है। दूसरों की ओर से आशा त्यागकर अपने बाहुबल और बुद्धिबल से समस्त कार्य संपन्न करना चाहिए। अर्थात स्वावलंबी या उद्योग करने वाला कभी दुखी, दरिद्र नहीं हो सकता है-

'करु बहिया बल आपनी, छाड़ बिरानी आस।

जाके अंगना नदी बहै, सो करा मरै पियास।।'[34]

अर्थात स्वयं कष्ट करने से व्यक्ति अपने आंगन में नदी भी बहाता है ऐसा व्यक्ति प्यासा क्यों मरेगा? अतः स्वावलंबी व्यक्ति ही समाज में अभिमान और प्रतिष्ठा के साथ व्यवहार कर सकता है।

निष्कर्ष:

कबीर मनुष्य के जीवन में नैतिक मूल्यों की आवश्यकता पर बल देते हैं। वे प्रेम, दया, दान, परोपकार, इंद्रिय संयम, सत्संगति, निंदा, त्याग, क्रोध-विसर्जन आदि शाश्वत मूल्यों को जीवन के सुख का आधार मानते थे। इन गुणों की रक्षा का स्रोत आत्मपरीक्षण। हमारे पड़ोस में रहने वाला व्यक्ति यदि हमारी निंदा करता है तो उससे हमें अपने दुर्गुणों को दूर करने की प्रेरणा मिलती है। इसलिए वे निंदक का सम्मान करने को कहते हैं। उन्होंने अपने उपदेश में जीवन के हर क्षेत्र में 'पवित्र' को स्थान दिया है। उनके उपदेशों को शीर्षकों में बांधना सहज साध्य नहीं है। मनुष्य के मन में प्रेम बहुत पवित्र वस्तु है, उसका उदय होते ही अज्ञान जनित अंधकार नष्ट हो जाता है, आत्मा निर्मल होकर ईश्वरोन्मुख बनता है। जो मनुष्य समस्त प्राणी जगत में एक ही ब्रह्म के अस्तित्व को स्वीकार कर व्यवहार करता है उसके लिए किसी से क्रोध करना, द्वेष करना, कपट करना तथा अन्य वैमनस्यादि भावों को प्रदर्शित करने का प्रश्न ही नहीं उठता। नैतिकता की इसी भावधारा का प्रवाह संत कबीर की वाणी में समाहित है।

संदर्भ सूची:

1. डॉ. नेपालसिंह, उत्तरी भारत के सांस्कृतिक विकास में संतों का योगदान, पृ. 280
2. सं. परशुराम चतुर्वेदी, कबीर साहित्य की परख, पृ. 164
3. डॉ. पुष्पपाल सिंह, कबीर ग्रंथावली (सटीक), पृ. 261
4. कबीर ग्रंथावली, पृ. 13
5. वही, पृ. 13
6. कबीर, बीजक (कबीर चैरा मठ), साखी-139, पृ. 407
7. कबीर, संत बानी संग्रह, पृ. 49
8. वही, पृ. 46
9. डॉ. पुष्पपाल सिंह, कबीर ग्रंथावली (सटीक), सांच-कौ-अंग-198, पृ. 116
10. वही, साँच-कौ-अंग-2, पृ. 116

www.ignited.in

11. वही, दोहा-17, पृ. 196

12. सं. डॉ. श्यामसुंदर दास, कबीर ग्रंथावली, साखी 26/3

13. वही, पद-24, पृ. 96

14. वही, संजीवनी-कौ-अंग-6, पृ. 60

15. साखी ग्रंथ, उपदेश कौ अंग-17, पृ. 275

16. डॉ. पुष्पपाल सिंह, कबीर ग्रंथावली (सटीक), बेसास-कौ-अंग-8, पृ. 234

17. डॉ. पुष्पपाल सिंह, कबीर ग्रंथावली (सटीक), पृ. 182

18. वही, पृ. 182

19. कबीर ग्रंथावली, अंग-10, पृ. 36

20. संत बानी संग्रह, भाग-1, पृ. 54

21 सं. डॉ. राजेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी, कबीर ग्रंथावली-सुंदरी-कौ-अंग-17, पृ. 104

22. वही, साखी-5, पृ. 6

23. डॉ. पुष्पपाल सिंह, कबीर ग्रंथावली (सटीक), पृ. 283

24 वही, पृ. 283

25. वाल्मीकी रामायण, सुंदरकांड-5515,

26. डॉ. पुष्पपाल सिंह, कबीर ग्रंथावली (सटीक), कामी नर कौ अंग-1, पृ.114

27. वही, पृ. 112

28. वही, पृ. 86

29. अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', कबीर वचनावली, क्षमा-कौ-अंग-1, पृ. 137

30. डॉ. काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास, पृ 448-151 से

31. डॉ. श्यामसुंदर दास, कबीर ग्रंथावली- साखी 42/3, पृ. 52

32. वही, साखी-24/3, पृ. 35

33. डॉ. रामसजन पांडये, संतों की सांस्कृतिक संस्तृति, पृ. 346

34. कबीर, बीजक (कबीर चैरा मठ), साखी-277, पृ. 453

Corresponding Author

Reena Saroha*

Research Scholar, PhD Hindi, NIILM University, Kaithal, Haryana

www.ignited.in